श्राद्ध-महिमा
वराह-वायु पुराण, मनुस्मृति, महाभारत पर आधारित एवं
कुछ पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के
सत्संग-प्रवचन से
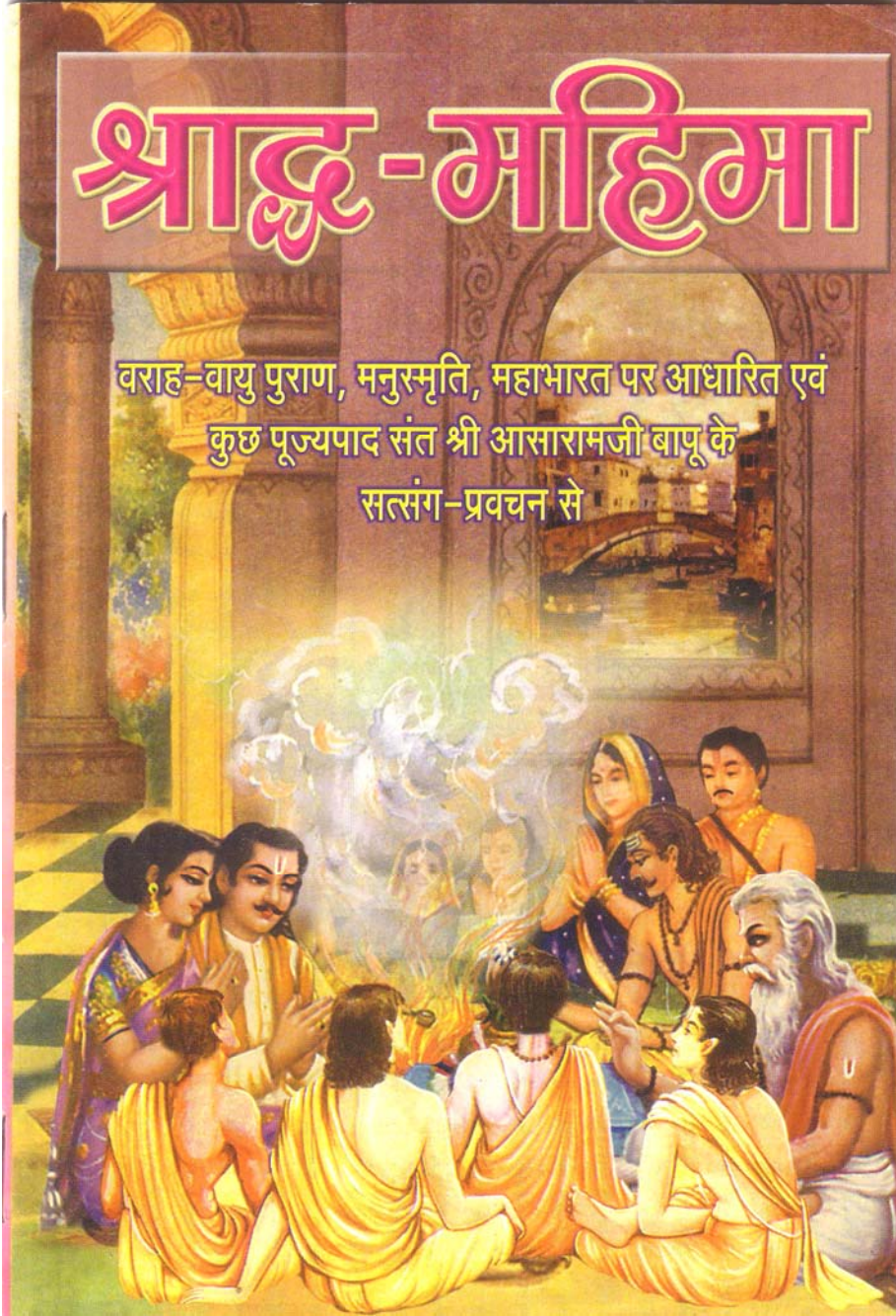
प्रस्तावना...

भारतीय संस्कृति की एक बड़ी विशेषता है कि जीते-जी तो विभिन्न संस्कारों के द्वारा, धर्मपालन के द्वारा मानव को समुन्नत करने के उपाय बताती ही है लेकिन मरने के बाद भी, अत्येष्टि संस्कार के बाद भी जीव की सदगति के लिए किये जाने योग्य संस्कारों का वर्णन करती है।

मरणोत्तर क्रियाओं-संस्कारों का वर्णन हमारे शास्त्र-पुराणों में आता है। आश्विन(गुजरात-महाराष्ट्र के मुताबिक भाद्रपद) के कृष्ण पक्ष को हमारे हिन्दू धर्म में श्राद्ध पक्ष के रूप में मनाया जाता है। श्राद्ध की महिमा एवं विधि का वर्णन विष्णु, वायु, वराह, मत्स्य आदि पुराणों एवं महाभारत, मनुस्मृति आदि शास्त्रों में यथास्थान किया गया है। उन्हीं पर आधारित पूज्यश्री के प्रवचनों को प्रस्तुत पुस्तक में संकलित किया गया है ताकि जनसाधारण 'श्राद्ध महिमा' से परिचित होकर पितरों के प्रति अपना कर्त्तव्य-पालन कर सके।

दिव्य लोकवासी पितरों के पुनीत आशीर्वाद से आपके कुल में दिव्य आत्माएँ अवतरित हो सकती हैं। जिन्होंने जीवन भर खून-पसीना एक करके इतनी साधन-सामग्री व संस्कार देकर आपको सुयोग्य बनाया उनके प्रति सामाजिक कर्त्तव्य-पालन अथवा उन पूर्वजों की प्रसन्नता, ईश्वर की प्रसन्नता अथवा अपने हृदय की शुद्धि के लिए सकाम व निष्काम भाव से यह श्राद्धकर्म करना चाहिए।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति, अमदावाद आश्रम।

अनुक्रम

श्राद्ध महिमा

हिन्दू धर्म में एक अत्यंत सुरभित पुष्प है कृतज्ञता की भावना, जो कि बालक में अपने माता-पिता के प्रति स्पष्ट परिलक्षित होती है। हिन्दू धर्म का व्यक्ति अपने जीवित माता-पिता की सेवा तो करता ही है, उनके देहावसान के बाद भी उनके कल्याण की भावना करता है एवं उनके अधूरे शुभ कार्यों को पूर्ण करने का प्रयत्न करता है। 'श्राद्ध-विधि' इसी भावना पर आधारित है।

मृत्यु के बाद जीवात्मा को उत्तम, मध्यम एवं कनिष्ठ कर्मानुसार स्वर्ग नरक में स्थान मिलता है। पाप-पुण्य क्षीण होने पर वह पुनः मृत्युलोक (पृथ्वी) में आता है। स्वर्ग में जाना यह पितृयान मार्ग है एवं जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होना यह देवयान मार्ग है।

पितृयान मार्ग से जाने वाले जीव पितृलोक से होकर चन्द्रलोक में जाते हैं। चंद्रलोक में अमृतान्न का सेवन करके निर्वाह करते हैं। यह अमृतान्न कृष्ण पक्ष में चंद्र की कलाओं के साथ क्षीण होता रहता है। अतः कृष्ण पक्ष में वंशजों को उनके लिए आहार पहुँचाना चाहिए, इसीलिए श्राद्ध एवं पिण्डदान की व्यवस्था की गयी है। शास्त्रों में आता है कि अमावस के दिन तो पितृतर्पण अवश्य करना चाहिए।

आधुनिक विचारधारा एवं नास्तिकता के समर्थक शंका कर सकते हैं किः "यहाँ दान किया गया अन्न पितरों तक कैसे पहुँच सकता है?"

भारत की मुद्रा 'रुपया' अमेरिका में 'डॉलर' एवं लंदन में 'पाउण्ड' होकर मिल सकती है एवं अमेरिका के डॉलर जापान में येन एवं दुबई में दीनार होकर मिल सकते हैं। यदि इस विश्व की नन्हीं सी मानव रचित सरकारें इस प्रकार मुद्राओं का रुपान्तरण कर सकती हैं तो ईश्वर की सर्वसमर्थ सरकार आपके द्वारा श्राद्ध में अर्पित वस्तुओं को पितरों के योग्य करके उन तक पहुँचा दे, इसमें क्या आश्चर्य है?

मान लो, आपके पूर्वज अभी पितृलोक में नहीं, अपित मनुष्य रूप में हैं। आप उनके लिए श्राद्ध करते हो तो श्राद्ध के बल पर उस दिन वे जहाँ होंगे वहाँ उन्हें कुछ न कुछ लाभ होगा। मैंने इस बात का अनुभव करके देखा है। मेरे पिता अभी मनुष्य योनि में हैं। यहाँ मैं उनका श्राद्ध करता हूँ उस दिन उन्हें कुछ न कुछ विशेष लाभ अवश्य हो जाता है।

मान लो, आपके पिता की मुक्ति हो गयी हो तो उनके लिए किया गया श्राद्ध कहाँ जाएगा? जैसे, आप किसी को मनीआर्डर भेजते हो, वह व्यक्ति मकान या आफिस खाली करके चला गया हो तो वह मनीआर्डर आप ही को वापस मिलता है, वैसे ही श्राद्ध के निमित्त से किया गया दान आप ही को विशेष लाभ देगा।

दूरभाष और दूरदर्शन आदि यंत्र हजारों किलोमीटर का अंतराल दूर करते हैं, यह प्रत्यक्ष है। इन यंत्रों से भी मंत्रों का प्रभाव बहुत ज्यादा होता है।

देवलोक एवं पितृलोक के वासियों का आयुष्य मानवीय आयुष्य से हजारों वर्ष ज्यादा होता है। इससे पितर एवं पितृलोक को मानकर उनका लाभ उठाना चाहिए तथा श्राद्ध करना चाहिए।

भगवान श्रीरामचन्द्रजी भी श्राद्ध करते थे। पैठण के महान आत्मज्ञानी संत हो गये श्री एकनाथ जी महाराज। पैठण के निंदक ब्राह्मणों ने एकनाथ जी को जाति से बाहर कर दिया था एवं उनके श्राद्ध-भोज का बहिष्कार किया था। उन योगसंपन्न एकनाथ जी ने ब्राह्मणों के एवं अपने पितृलोक वासी पितरों को बुलाकर भोजन कराया। यह देखकर पैठण के ब्राह्मण चकित रह गये एवं उनसे अपने अपराधों के लिए क्षमायाचना की।

जिन्होंने हमें पाला-पोसा, बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया, हममें भक्ति, ज्ञान एवं धर्म के संस्कारों का सिंचन किया उनका श्रद्धापूर्वक स्मरण करके उन्हें तर्पण-श्राद्ध से प्रसन्न करने के दिन ही हैं श्राद्धपक्ष। श्राद्धपक्ष आश्विन के (गुजरात-महाराष्ट्र में भाद्रपद के) कृष्ण पक्ष में की गयी श्राद्ध-विधि गया क्षेत्र में की गयी श्राद्ध-विधी के बराबर मानी जाती है। इस विधि में मृतात्मा की पूजा एवं उनकी इच्छा-तृप्ति का सिद्धान्त समाहित होता है।

प्रत्येक व्यक्ति के सिर पर देवऋण, पितृऋण एवं ऋषिऋण रहता है। श्राद्धक्रिया द्वारा पितृऋण से मुक्त हुआ जाता है। देवताओं को यज्ञ-भाग देने पर देवऋण से मुक्त हुआ जाता है। ऋषि-मुनि-संतों के विचारों को आदर्शों को अपने जीवन में उतारने से, उनका प्रचार-प्रसार करने से एवं उन्हे लक्ष्य मानकर आदरसहित आचरण करने से ऋषिऋण से मुक्त हुआ जाता है।

पुराणों में आता है कि आश्विन(गुजरात-महाराष्ट्र के मुताबिक भाद्रपद) कृष्ण पक्ष की अमावस (पितृमोक्ष अमावस) के दिन सूर्य एवं चन्द्र की युति होती है। सूर्य कन्या राशि में प्रवेश करता है। इस दिन हमारे पितर यमलोक से अपना निवास छोड़कर सूक्ष्म रूप से मृत्युलोक में अपने वंशजों के निवास स्थान में रहते हैं। अतः उस दिन उनके लिए विभिन्न श्राद्ध करने से वे तृप्त होते हैं।

सुनी है एक कथाः महाभारत के युद्ध में दुर्योधन का विश्वासपात्र मित्र कर्ण देह छोड़कर ऊर्ध्वलोक में गया एवं वीरोचित गति को प्राप्त हुआ। मृत्युलोक में वह दान करने के लिए प्रसिद्ध था। उसका पुण्य कई गुना बढ़ चुका था एवं दान स्वर्ण-रजत के ढेर के रूप में उसके सामने आया।

कर्ण ने धन का दान तो किया था किन्तु अन्नदान की उपेक्षा की थी अतः उसे धन तो बहुत मिला किन्तु क्षुधातृप्ति की कोई सामग्री उसे न दी गयी। कर्ण ने यमराज से प्रार्थना की तो यमराज ने उसे 15 दिन के लिए पृथ्वी पर जाने की सहमति दे दी। पृथ्वी पर आकर पहले उसने अन्नदान किया। अन्नदान की जो उपेक्षा की थी उसका बदला चुकाने के लिए 15 दिन तक साधु-संतों, गरीबों-ब्राह्मणों को अन्न-जल से तृप्त किया एवं श्राद्धविधि भी की। यह आश्विन (गुजरात महाराष्ट्र के मुताबिक भाद्रपद) मास का कृष्णपक्ष ही था। जब वह ऊर्ध्वलोक में लौटा तब उसे सभी प्रकार की खाद्य सामग्रियाँ ससम्मान दी गयीं।

धर्मराज यम ने वरदान दिया किः "इस समय जो मृतात्माओं के निमित्त अन्न जल आदि अर्पित करेगा, उसकी अंजलि मृतात्मा जहाँ भी होगी वहाँ तक अवश्य पहुँचेगी।"

जो निःसंतान ही चल बसें हों उन मृतात्माओं के लिए भी यदि कोई व्यक्ति इन दिनों में श्राद्ध-तर्पण करेगा अथवा जलांजलि देगा तो वह भी उन तक पहुँचेगी। जिनकी मरण तिथि ज्ञात न हो उनके लिए भी इस अवधि के दौरान दी गयी अंजलि पहुँचती है।

वैशाख शुक्ल 3, कार्तिक शुक्ल 9, आश्विन (गुजरात-महाराष्ट्र के मुताबिक भाद्रपद) कृष्ण 12 एवं पौष (गुजरात-महाराष्ट्र के मुताबिक मार्गशीर्ष) की अमावस ये चार तिथियाँ युगों की आदि तिथियाँ हैं। इन दिनों में श्राद्ध करना अत्यंत श्रेयस्कर है।

श्राद्धपक्ष के दौरान दिन में तीन बार स्नान एवं एक बार भोजन का नियम पालते हुए श्राद्ध विधि करनी चाहिए।

जिस दिन श्राद्ध करना हो उस दिन किसी विशिष्ट व्यक्ति को आमंत्रण न दें, नहीं तो उसी की आवभगत में ध्यान लगा रहेगा एवं पितरों का अनादर हो जाएगा। इससे पितर अतृप्त होकर नाराज भी हो सकते हैं। जिस दिन श्राद्ध करना हो उस दिन विशेष उत्साहपूर्वक सत्संग, कीर्तन, जप, ध्यान आदि करके अंतःकरण पवित्र रखना चाहिए।

जिनका श्राद्ध किया जाये उन माता, पिता, पति, पत्नी, संबंधी आदि का स्मरण करके उन्हें याद दिलायें किः "आप देह नहीं हो। आपकी देह तो समाप्त हो चुकी है, किंतु आप विद्यमान हो। आप अगर आत्मा हो.. शाश्वत हो... चैतन्य हो। अपने शाश्वत स्वरूप को निहार कर हे पितृ आत्माओं ! आप भी परमात्ममय हो जाओ। हे पितरात्माओं ! हे पुण्यात्माओं ! अपने परमात्म-स्वभाव का स्मरण करके जन्म मृत्यु के चक्र से सदा-सदा के लिए मुक्त हो जाओ। हे पितृ आत्माओं ! आपको हमारे प्रणाम हैं। हम भी नश्वर देह के मोह से सावधान होकर अपने शाश्वत् परमात्म-स्वभाव में जल्दी जागें.... परमात्मा एवं परमात्म-प्राप्त महापुरुषों के आशीर्वाद आप पर हम पर बरसते रहें.... ॐ....ॐ.....ॐ...."

सूक्ष्म जगत के लोगों को हमारी श्रद्धा और श्रद्धा से दी गयी वस्तु से तृप्ति का एहसास होता है। बदले में वे भी हमें मदद करते हैं, प्रेरणा देते हैं, प्रकाश देते हैं, आनंद और शाँति देते हैं। हमारे घर में किसी संतान का जन्म होने वाला हो तो वे अच्छी आत्माओं को भेजने में सहयोग करते हैं। श्राद्ध की बड़ी महिमा है। पूर्वजों से उऋण होने के लिए, उनके शुभ आशीर्वाद से उत्तम संतान की प्राप्ति के लिए श्राद्ध किया जाता है।

आजादी से पूर्व काँग्रेस बुरी तरह से तीन-चार टुकड़ों में बँट चुकी थी। अँग्रेजों का षडयंत्र सफल हो रहा था। काँग्रेस अधिवेशन में कोई आशा नहीं रह गयी थी कि बिखरे हुए नेतागण कुछ कर सकेंगे। महामना मदनमोहन मालवीय, भारत की आजादी में जिनका योगदान सराहनीय रहा है, यह बात ताड़ गये कि सबके रवैये बदल चुके हैं और अँग्रेजों का षडयंत्र सफल हो रहा है। अतः अधिवेशन के बीच में ही चुपके से खिसक गये एक कमरे में। तीन आचमन लेकर, शांत

होकर बैठ गये। उन्हें अंतः प्रेरणा हुई और उन्होंने श्रीमदभागवदगीता के '**गजेन्द्रमोक्ष**' का पाठ किया।

बाद में थोड़ा सा सत्संग प्रवचन दिया तो काँग्रेस के सारे खिंचाव-तनाव समाप्त हो गये एवं सब बिखरे हुए काँग्रेसी एक जुट होकर चल पड़े। आखिर अंग्रेजों को भारत छोड़ना ही पड़ा।

काँग्रेस के बिखराव को समाप्त करके, काँग्रसियों को एकजुट कर कार्य करवानेवाले मालवीयजी का जन्म कैसे हुआ था?

मालवीयजी के जन्म से पूर्व हिन्दुओं ने अंग्रेजों के विरुद्ध जब आंदोलन की शुरुआत की थी तब अंग्रेजों ने सख्त 'कर्फ्यू' जारी कर दिया था। ऐसे दौर में एक बार मालवीयजी के पिता जी कहीं से कथा करके पैदल ही घर आ रहे थे।

उन्हें मार्ग में जाते देखकर अंग्रेज सैनिकों ने रोका-टोका एवं सताना शुरु किया। वे उनकी भाषा नहीं जानते थे और अंग्रेज सैनिक उनकी भाषा नहीं जानते थे। मालवीय जी के पिता ने अपना साज निकाला और कीर्तन करने लगे। कीर्तन से अंग्रेज सैनिकों को कुछ आनंद आया और इशारों से धन्यवाद देते हुए उन्होंने कहा किः "चलो, हम आपको पहुँचा देते हैं।" यह देखकर मालवीयजी के पिता को हुआ किः "मेरे कीर्तन से प्रभावित होकर इन्होंने मुझे तो हैरान करना बन्द कर दिया किन्तु मेरे भारत देश के लाखों-करोड़ों भाईयों का शोषण हो रहा है, इसके लिए मुझे कुछ करना चाहिए।"

बाद में वे गया जी गये और प्रेमपूर्वक श्राद्ध किया। श्राद्ध के अंत में अपने दोनों हाथ उठाकर पितरों से प्रार्थना करते हुए उन्होंने कहाः 'हे पितरो ! मेरे पिण्डदान से अगर आप तृप्त हुए हों, मेरा किया हुआ श्राद्ध अगर आप तक पहुँचा हो तो आप कृपा करके मेरे घर में ऐसी ही संतान दीजिए जो अंग्रेजों को भगाने का काम करे और मेरा भारत आजाद हो जाये.....।'

पिता की अंतिम प्रार्थना फली। समय पाकर उन्हीं के घर मदनमोहन मालवीय जी का जन्म हुआ।

(अनुक्रम)

शास्त्रों में श्राद्ध विधान

जो श्रद्धा से दिया जाये उसे श्राद्ध कहते हैं। श्रद्धा मंत्र के मेल से जो विधि होती है उसे श्राद्ध कहते हैं। जीवात्मा का अगला जीवन पिछले संस्कारों से बनता है। अतः श्राद्ध करके यह भावना की जाती है कि उसका अगला जीवन अच्छा हो। जिन पितरों के प्रति हम कृतज्ञतापूर्वक श्राद्ध करते हैं वे हमारी सहायता करते हैं।

'वायु पुराण' में आत्मज्ञानी सूत जी ऋषियों से कहते हैं- "हे ऋषिवृंद ! परमेष्ठि ब्रह्मा ने पूर्वकाल में जिस प्रकार की आज्ञा दी है उसे तुम सुनो। ब्रह्मा जी ने कहा हैः 'जो लोग मनुष्यलोक

के पोषण की दृष्टि से श्राद्ध आदि करेंगे, उन्हें पितृगण सर्वदा पुष्टि एवं संतति देंगे। श्राद्धकर्म में अपने प्रपितामह तक के नाम एवं गोत्र का उच्चारण कर जिन पितरों को कुछ दे दिया जायेगा वे पितृगण उस श्राद्धदान से अति संतुष्ट होकर देनेवाले की संततियों को संतुष्ट रखेंगे, शुभ आशिष तथा विशेष सहाय देंगे।"

हे ऋषियो ! उन्हीं पितरों की कृपा से दान, अध्ययन, तपस्या आदि सबसे सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि वे पितृगण ही हम सबको सत्प्रेरणा प्रदान करने वाले हैं।

नित्यप्रति गुरुपूजा-प्रभृति सत्कर्मों में निरत रहकर योगाभ्यासी सब पितरों को तृप्त रखते हैं। योगबल से वे चंद्रमा को भी तृप्त करते हैं जिससे त्रैलोक्य को जीवन प्राप्त होता है। इससे योग की मर्यादा जानने वालों को सदैव श्राद्ध करना चाहिए।

मनुष्यों द्वारा पितरों को श्रद्धापूर्वक दी गई वस्तुएँ ही श्राद्ध कही जाती हैं। श्राद्धकर्म में जो व्यक्ति पितरों की पूजा किये बिना ही किसी अन्य क्रिया का अनुष्ठान करता है उसकी उस क्रिया का फल राक्षसों तथा दानवों को प्राप्त होता है। (अनुक्रम)

श्राद्धयोग्य ब्राह्मण

'वराह पुराण' में श्राद्ध की विधि का वर्णन करते हुए मार्कण्डेयजी गौरमुख ब्राह्मण से कहते हैं- "विप्रवर ! छहों वेदांगो को जानने वाले, यज्ञानुष्ठान में तत्पर, भानजे, दौहित्र, श्वसुर, जामाता, मामा, तपस्वी ब्राह्मण, पंचाग्नि तपने वाले, शिष्य, संबंधी तथा अपने माता पिता के प्रेमी ब्राह्मणों को श्राद्धकर्म में नियुक्त करना चाहिए।

'मनुस्मृति' में कहा गया हैः

"जो क्रोधरहित, प्रसन्नमुख और लोकोपकार में निरत हैं ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणों को मुनियों ने श्राद्ध के लिए देवतुल्य कहा है।" (**मनुस्मृतिः** 3.213)

वायु पुराण में आता हैः श्राद्ध के अवसर पर हजारों ब्राह्मणों को भोजन कराने स जो फल मिलता है, वह फल योग में निपुण एक ही ब्राह्मण संतुष्ट होकर दे देता है एवं महान् भय (नरक) से छुटकारा दिलाता है। एक हजार गृहस्थ, सौ वानप्रस्थी अथवा एक ब्रह्मचारी – इन सबसे एक योगी (योगाभ्यासी) बढ़कर है। जिस मृतात्मा का पुत्र अथवा पौत्र ध्यान में निमग्न रहने वाले किसी योगाभ्यासी को श्राद्ध के अवसर पर भोजन करायेगा, उसके पितृगण अच्छी वृष्टि से संतुष्ट किसानों की तरह परम संतुष्ट होंगे। यदि श्राद्ध के अवसर पर कोई योगाभ्यासी ध्यानपरायण भिक्षु न मिले तो दो ब्रह्मचारियों को भोजन कराना चाहिए। वे भी न मिलें तो किसी उदासीन ब्राह्मण को भोजन करा देना चाहिए। जो व्यक्ति सौ वर्षों तक केवल एक पैर पर खड़े होकर, वायु का आहार करके स्थित रहता है उससे भी बढ़कर ध्यानी एवं योगी है – ऐसी ब्रह्मा जी की आज्ञा है।

मित्रघाती, स्वभाव से ही विकृत नखवाला, काले दाँतवाला, कन्यागामी, आग लगाने वाला, सोमरस बेचने वाला, जनसमाज में निंदित, चोर, चुगलखोर, ग्राम-पुरोहित, वेतन लेकर

पढ़ानेवाला, पुनर्विवाहिता स्त्री का पति, माता-पिता का परित्याग करने वाला, हीन वर्ण की संतान का पालन-पोषण करने वाला, शूद्रा स्त्री का पति तथा मंदिर में पूजा करके जीविका चलाने वाला ब्राह्मण श्राद्ध के अवसर पर निमंत्रण देने योग्य नहीं हैं, ऐसा कहा गया है।

बच्चों का सूतक जिनके घर में हो, दीर्घ काल से जो रोगग्रस्त हो, मलिन एवं पतित विचारोंवाले हों, उनको किसी भी प्रकार से श्राद्धकर्म नहीं देखने चाहिए। यदि वे लोग श्राद्ध के अन्न को देख लेते हैं तो वह अन्न हव्य के लिए उपयुक्त नहीं रहता। इनके द्वारा स्पर्श किये गये श्राद्धादि संस्कार अपवित्र हो जाते हैं।

(वायु पुराणः 78.39.40)

"ब्रह्महत्या करने वाले, कृतघ्न, गुरुपत्नीगामी, नास्तिक, दस्यु, नृशंस, आत्मज्ञान से वंचित एवं अन्य पापकर्मपरायण लोग भी श्राद्धकर्म में वर्जित हैं। विशेषतया देवताओं और देवर्षियों की निंदा में लिप्त रहने वाले लोग भी वर्ज्य हैं। इन लोगों द्वारा देखा गया श्राद्धकर्म निष्फल हो जाता है। (अनुक्रम)

(वायु पुराणः 78.34.35)

ब्राह्मण को निमंत्रण

विचारशील पुरुष को चाहिए कि वह संयमी, श्रेष्ठ ब्राह्मणों को एक दिन पूर्व ही निमंत्रण दे दे। श्राद्ध के दिन कोई अनिमंत्रित तपस्वी ब्राह्मण, अतिथि या साधु-सन्यासी घर पर पधारें तो उन्हें भी भोजन कराना चाहिए। श्राद्धकर्त्ता को घर पर आये हुए ब्राह्मणों के चरण धोने चाहिए। फिर अपने हाथ धोकर उन्हें आचमन करना चाहिए। तत्पश्चात उन्हें आसनों पर बैठाकर भोजन कराना चाहिए।

पितरों के निमित्त अयुग्म अर्थात एक, तीन, पाँच, सात इत्यादि की संख्या में तथा देवताओं के निमित्त युग्म अर्थात दो, चार, छः, आठ आदि की संख्या में ब्राह्मणों को भोजन कराने की व्यवस्था करनी चाहिए। देवताओं एवं पितरों दोनों के निमित्त एक-एक ब्राह्मण को भोजन कराने का भी विधान है।

वायु पुराण में बृहस्पति अपने पुत्र शंयु से कहते हैं-

"जितेन्द्रिय एवं पवित्र होकर पितरों को गंध, पुष्प, धूप, घृत, आहुति, फल, मूल आदि अर्पित करके नमस्कार करना चाहिए। पितरों को प्रथम तृप्त करके उसके बाद अपनी शक्ति अनुसार अन्न-संपत्ति से ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए। सर्वदा श्राद्ध के अवसर पितृगण वायुरूप धारण कर ब्राह्मणों को देखकर उन्ही आविष्ट हो जाते हैं इसीलिए मैं तत्पश्चात उनको भोजन कराने की बात कर रहा हूँ। वस्त्र, अन्न, विशेष दान, भक्ष्य, पेय, गौ, अश्व तथा ग्रामादि का दान

देकर उत्तम ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए। द्विजों का सत्कार होने पर पितरगण प्रसन्न होते हैं।"
(अनुक्रम)

(वायु पुराणः 75.12-15)

श्राद्ध के समय हवन और आहुति

"पुरुषप्रवर ! श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मण को भोजन कराने के पहले उनसे आज्ञा पाकर लवणहीन अन्न और शाक से अग्नि में तीन बार हवन करना चाहिए। उनमें **'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा.....'** इस मंत्र से पहली आहुति, **'सोमाय पितृमते स्वाहा.....'** इस मंत्र से दूसरी आहूति एवं **'वैवस्वताय स्वाहा....'** मंत्र बोलकर तीसरी आहुति देने का समुचित विधान है। तत्पश्चात हवन करने से बचा हुआ अन्न थोड़ा-थोड़ा सभी ब्राह्मणों के पात्रों में दें।" (अनुक्रम)

अभिश्रवण एवं रक्षक मंत्र

श्राद्धविधि में मंत्रों का बड़ा महत्व है। श्राद्ध में आपके द्वारा दी गई वस्तुएँ कितनी भी मूल्यवान क्यों न हों, लेकिन आपके द्वारा यदि मंत्रों का उच्चारण ठीक न हो तो कार्य अस्त-व्यस्त हो जाता है। मंत्रोच्चारण शुद्ध होना चाहिए और जिनके निमित्त श्राद्ध करते हों उनके नाम का उच्चारण शुद्ध करना चाहिए।

श्राद्ध में ब्राह्मणों को भोजन कराते समय **'रक्षक मंत्र'** का पाठ करके भूमि पर तिल बिखेर दें तथा अपने पितृरूप में उन द्विजश्रेष्ठों का ही चिंतन करें। **'रक्षक मंत्र'** इस प्रकार हैः

यज्ञेश्वरो यज्ञसमस्तनेता भोक्ताऽव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽस्तु ।
तत्संनिधानादपयान्तु सद्यो रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे ।।

'यहाँ संपूर्ण हव्य-फल के भोक्ता यज्ञेश्वर भगवान श्रीहरि विराजमान हैं। अतः उनकी सन्निधि के कारण समस्त राक्षस और असुरगण यहाँ से तुरन्त भाग जाएँ।'

(वराह पुराणः 14.32)

ब्राह्मणों को भोजन के समय यह भावना करें किः

'इन ब्राह्मणों के शरीरों में स्थित मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आदि आज भोजन से तृप्त हो जाएँ।'

जैसे, यहाँ के भेजे हुए रुपये लंदन में पाउण्ड, अमेरिका में डालर एवं जापान में येन बन जाते हैं ऐसे ही पितरों के प्रति किये गये श्राद्ध का अन्न, श्राद्धकर्म का फल हमारे पितर जहाँ हैं, जैसे हैं, उनके अनुरूप उनको मिल जाता है। किन्तु इसमें जिनके लिए श्राद्ध किया जा रहा हो,

उनके नाम, उनके पिता के नाम एवं गोत्र के नाम का स्पष्ट उच्चारण होना चाहिए। विष्णु पुराण में आता हैः

श्रद्धासमन्वितैर्दत्तं पितृभ्यो नामगोत्रतः।

यदाहारास्तु ते जातास्तदाहारत्वमेति तत्।।

'श्रद्धायुक्त व्यक्तियों द्वारा नाम और गोत्र का उच्चारण करके दिया हुआ अन्न पितृगण को वे जैसे आहार के योग्य होते हैं वैसा ही होकर उन्हें मिलता है'।(अनुक्रम)

(विष्णु पुराणः 3.16.16)

श्राद्ध में भोजन कराने का विधान

भोजन के लिए उपस्थित अन्न अत्यंत मधुर, भोजनकर्त्ता की इच्छा के अनुसार तथा अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ होना चाहिए। पात्रों में भोजन रखकर श्राद्धकर्त्ता को अत्यंत सुंदर एवं मधुरवाणी से कहना चाहिए किः 'हे महानुभावो ! अब आप लोग अपनी इच्छा के अनुसार भोजन करें।'

फिर क्रोध तथा उतावलेपन को छोड़कर उन्हें भक्ति पूर्वक भोजन परोसते रहना चाहिए।

ब्राह्मणों को भी दत्तचित्त और मौन होकर प्रसन्न मुख से सुखपूर्वक भोजन करना चाहिए।

"लहसुन, गाजर, प्याज, करम्भ (दही मिला हुआ आटा या अन्य भोज्य पदार्थ) आदि वस्तुएँ जो रस और गन्ध से निन्द्य हैं, श्राद्धकर्म में निषिद्ध हैं।"

(वायु पुराणः 78.12)

"ब्राह्मण को चाहिए कि वह भोजन के समय कदापि आँसू न गिराये, क्रोध न करे, झूठ न बोले, पैर से अन्न के न छुए और उसे परोसते हुए न हिलाये। आँसू गिराने से श्राद्धान्न भूतों को, क्रोध करने से शत्रुओं को, झूठ बोलने से कुत्तों को, पैर छुआने से राक्षसों को और उछालने से पापियों को प्राप्त होता है।"

(मनुस्मृतिः 3.229.230)

"जब तक अन्न गरम रहता है और ब्राह्मण मौन होकर भोजन करते हैं, भोज्य पदार्थों के गुण नहीं बतलाते तब तक पितर भोजन करते हैं। सिर में पगड़ी बाँधकर या दक्षिण की ओर मुँह करके या खड़ाऊँ पहनकर जो भोजन किया जाता है उसे राक्षस खा जाते हैं।"

(मनुस्मृतिः 3.237.238)

"भोजन करते हुए ब्राह्मणों पर चाण्डाल, सूअर, मुर्गा, कुत्ता, रजस्वला स्त्री और नपुंसक की दृष्टि नहीं पड़नी चाहिए। होम, दान, ब्राह्मण-भोजन, देवकर्म और पितृकर्म को यदि ये देख लें तो वह कर्म निष्फल हो जाता है।

सूअर के सूँघने से, मुर्गी के पंख की हवा लगने से, कुत्ते के देखने से और शूद्र के छूने से श्राद्धान्न निष्फल हो जाता है। लँगड़ा, काना, श्राद्धकर्ता का सेवक, हीनांग, अधिकांग इन सबको श्राद्ध-स्थल से हटा दें।"

(मनुस्मृतिः 3.241.242)

"श्राद्ध से बची हुई भोजनादि वस्तुएँ स्त्री को तथा जो अनुचर न हों ऐसे शूद्र को नहीं देनी चाहिए। जो अज्ञानवश इन्हें दे देता है, उसका दिया हुआ श्राद्ध पितरों को नहीं प्राप्त होता। इसलिए श्राद्धकर्म में जूठे बचे हुए अन्नादि पदार्थ किसी को नहीं देना चाहिए।" (अनुक्रम)

(वायु पुराणः 79.83)

अन्न आदि के वितरण का विधान

जब निमंत्रित ब्राह्मण भोजन से तृप्त हो जायें तो भूमि पर थोड़ा-सा अन्न डाल देना चाहिए। आचमन के लिए उन्हे एक बार शुद्ध जल देना आवश्यक है। तदनंतर भली भांति तृप्त हुए ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर भूमि पर उपस्थित सभी प्रकार के अन्न से पिण्डदान करने का विधान है। श्राद्ध के अंत में बलिवैश्वदेव का भी विधान है।

ब्राह्मणों से सत्कारित तथा पूजित यह एक मंत्र समस्त पापों को दूर करने वाला, परम पवित्र तथा अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति कराने वाला है।

सूत जी कहते हैः "हे ऋषियो ! इस मंत्र की रचना ब्रह्मा जी ने की थी। यह अमृत मंत्र हैः

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्युत।।

"समस्त देवताओं, पितरों, महायोगिनियों, स्वधा एवं स्वाहा सबको हम नमस्कार करते हैं। ये सब शाश्वत फल प्रदान करने वाले हैं।"

(वायु पुराणः 74.16)

सर्वदा श्राद्ध के प्रारम्भ, अवसान तथा पिण्डदान के समय सावधानचित्त होकर तीन बार इस मंत्र का पाठ करना चाहिए। इससे पितृगण शीघ्र वहाँ आ जाते हैं और राक्षसगण भाग जाते हैं। राज्य प्राप्ति के अभिलाषी को चाहिए कि वह आलस्य रहित होकर सर्वदा इस मंत्र का पाठ करें। यह वीर्य, पवित्रता, धन, सात्त्विक बल, आयु आदि को बढ़ाने वाला है।

बुद्धिमान पुरुष को चाहिए की वह कभी दीन, क्रुद्ध अथवा अन्यमनस्क होकर श्राद्ध न करे। एकाग्रचित्त होकर श्राद्ध करना चाहिए। मन में भावना करे किः 'जो कुछ भी अपवित्र तथा अनियमित वस्तुएँ है, मैं उन सबका निवारण कर रहा हूँ। विघ्न डालने वाले सभी असुर एवं दानवों को मैं मार चुका हूँ। सब राक्षस, यक्ष, पिशाच एवं यातुधानों (राक्षसों) के समूह मुझसे मारे जा चुके हैं।"(अनुक्रम)

श्राद्ध में दान

श्राद्ध के अन्त में दान देते समय हाथ में काले तिल, जौ और कुश के साथ पानी लेकर ब्राह्मण को दान देना चाहिए ताकि उसका शुभ फल पितरों तक पहुँच सके, नहीं तो असुर लोग हिस्सा ले जाते हैं। ब्राह्मण के हाथ में अक्षत(चावल) देकर यह मंत्र बोला जाता हैः

अक्षतं चास्तु में पुण्यं शांति पुष्टिर्धृतिश्च मे।
यदिच्छ्रेयस् कर्मलोके तदस्तु सदा मम।।

"मेरा पुण्य अक्षय हो। मुझे शांति, पुष्टि और धृति प्राप्त हो। लोक में जो कल्याणकारी वस्तुएँ हैं, वे सदा मुझे मिलती रहें।"

इस प्रकार की प्रार्थना भी की जा सकती है।

पितरों को श्रद्धा से ही बुलाया जा सकता है। केवल कर्मकाण्ड या वस्तुओं से काम नहीं होता है।

"श्राद्ध में चाँदी का दान, चाँदी के अभाव में उसका दर्शन अथवा उसका नाम लेना भी पितरों को अनन्त एवं अक्षय स्वर्ग देनेवाला दान कहा जाता है। योग्य पुत्रगण चाँदी के दान से अपने पितरों को तारते हैं। काले मृगचर्म का सान्निध्य, दर्शन अथवा दान राक्षसों का विनाश करने वाला एवं ब्रह्मतेज का वर्धक है। सुवर्णनिर्मित, चाँदीनिर्मित, ताम्रनिर्मित वस्तु, दौहित्र, तिल, वस्त्र, कुश का तृण, नेपाल का कम्बल, अन्यान्य पवित्र वस्तुएँ एवं मन, वचन, कर्म का योग, ये सब श्राद्ध में पवित्र वस्तुएँ कही गई हैं।"

(वायु पुराणः 74.1-4)

श्राद्धकाल में ब्राह्मणों को अन्न देने में यदि कोई समर्थ न हो तो ब्राह्मणों को वन्य कंदमूल, फल, जंगली शाक एवं थोड़ी-सी दक्षिणा ही दे। यदि इतना करने भी कोई समर्थ न हो तो किसी भी द्विजश्रेष्ठ को प्रणाम करके एक मुट्ठी काले तिल दे अथवा पितरों के निमित्त पृथ्वी पर भक्ति एवं नम्रतापूर्वक सात-आठ तिलों से युक्त जलांजलि दे देवे। यदि इसका भी अभाव हो तो कहीं कहीं न कहीं से एक दिन का घास लाकर प्रीति और श्रद्धापूर्वक पितरों के उद्देश्य से गौ को खिलाये। इन सभी वस्तुओं का अभाव होने पर वन में जाकर अपना कक्षमूल (बगल) सूर्य को दिखाकर उच्च स्वर से कहेः

न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्यच्छ्राद्धस्य योग्यं स्वपितृन्नतोऽस्मि।
तृष्यन्तु भक्तया पितरो मयैतौ भुजौ ततौ वर्त्मनि मारूतस्य।।

मेरे पास श्राद्ध कर्म के योग्य न धन-संपत्ति है और न कोई अन्य सामग्री। अतः मैं अपने पितरों को प्रणाम करता हूँ। वे मेरी भक्ति से ही तृप्तिलाभ करें। मैंने अपनी दोनों बाहें आकाश में उठा रखी हैं।

वायु पुराणः 13.58

कहने का तात्पर्य यह है कि पितरों के कल्याणार्थ श्राद्ध के दिनों में श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। पितरों को जो श्रद्धामय प्रसाद मिलता है उससे वे तृप्त होते हैं। (अनुक्रम)

श्राद्ध में पिण्डदान

हमारे जो सम्बन्धी देव हो गये हैं, जिनको दूसरा शरीर नहीं मिला है वे पितृलोक में अथवा इधर उधर विचरण करते हैं, उनके लिए पिण्डदान किया जाता है।

बच्चों एवं सन्यासियों के लिए पिण्डदान नहीं किया जाता। पिण्डदान उन्हीं का होता है जिनको मैं-मेरे की आसक्ति होती है। बच्चों की मैं-मेरे की स्मृति और आसक्ति विकसित नहीं होती और सन्यास ले लेने पर शरीर को मैं मानने की स्मृति सन्यासी को हटा देनी होती है। शरीर में उनकी आसक्ति नहीं होती इसलिए उनके लिए पिण्डदान नहीं किया जाता।

श्राद्ध में बाह्य रूप से जो चावल का पिण्ड बनाया जाता, केवल उतना बाह्य कर्मकाण्ड नहीं है वरन् पिण्डदान के पीछे तात्त्विक ज्ञान भी छुपा है।

जो शरीर में नहीं रहे हैं, पिण्ड में हैं, उनका भी नौ तत्त्वों का पिण्ड रहता हैः चार अन्तःकरण और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। उनका स्थूल पिण्ड नहीं रहता है वरन् वायुमय पिण्ड रहता है। वे अपनी आकृति दिखा सकते हैं किन्तु आप उन्हे छू नहीं सकते । दूर से ही वे आपकी दी हुई चीज़ को भावनात्मक रूप से ग्रहण करते हैं। दूर से ही वे आपको प्रेरणा आदि देते हैं अथवा कोई कोई स्वप्न में भी मार्गदर्शन देते हैं।

अगर पितरों के लिए किया गया पिण्डदान एवं श्राद्धकर्म व्यर्थ होता तो वे मृतक पितर स्वप्न में यह नहीं कहते किः हम दुःखी हैं। हमारे लिए पिण्डदान करो ताकि हमारी पिण्ड की आसक्ति छूटे और हमारी आगे की यात्रा हो... हमें दूसरा शरीर, दूसरा पिण्ड मिल सके।

श्राद्ध इसीलिए किया जाता है कि पितर मंत्र एवं श्रद्धापूर्वक किये गये श्राद्ध की वस्तुओं को भावनात्मक रूप से ले लेते हैं और वे तृप्त भी होते हैं। (अनुक्रम)

श्राद्ध के प्रकार

श्राद्ध के अनेक प्रकार हैं- नित्य श्राद्ध, काम्य श्राद्ध, एकोदिष्ट श्राद्ध, गोष्ठ श्राद्ध आदि-आदि।

नित्य श्राद्धः यह श्राद्ध जल द्वारा, अन्न द्वारा प्रतिदिन होता है। श्रद्धा-विश्वास से किये जाने वाले देवपूजन, माता-पिता एवं गुरुजनों के पूजन को नित्य श्राद्ध कहते हैं। अन्न के अभाव में जल से भी श्राद्ध किया जाता है।

काम्य श्राद्धः जो श्राद्ध कुछ कामना रखकर किया जाता है, उसे काम्य श्राद्ध कहते हैं।

वृद्ध श्राद्धः विवाह, उत्सव आदि अवसर पर वृद्धों के आशीर्वाद लेने हेतु किया जाने वाला श्राद्ध वृद्ध श्राद्ध कहलाता है।

सपिंडित श्राद्धः सपिंडित श्राद्ध सम्मान हेतु किया जाता है।

पार्व श्राद्धः मंत्रों से पर्वों पर किया जाने वाला श्राद्ध पार्व श्राद्ध है जैसे अमावस्या आदि पर्वों पर किया जाने वाला श्राद्ध।

गोष्ठ श्राद्धः गौशाला में किया जाने वाला गौष्ठ श्राद्ध कहलाता है।

शुद्धि श्राद्धः पापनाश करके अपनी शुद्धि कराने के लिए जो श्राद्ध किया जाता है वह है शुद्धि श्राद्ध।

दैविक श्राद्धः देवताओँ को प्रसन्न करने के उद्देश्य से दैविक श्राद्ध किया जाता है।

कर्मांग श्राद्धः आने वाली संतति के लिए गर्भाधान, सोमयाग, सीमान्तोन्नयन आदि जो संस्कार किये जाते हैं, उन्हें कर्मांग श्राद्ध कहते हैं।

तुष्टि श्राद्धः देशान्तर में जाने वाले की तुष्टि के लिए जो शुभकामना की जाती है, उसके लिए जो दान पुण्य आदि किया जाता है उसे तुष्टि श्राद्ध कहते हैं। अपने मित्र, भाई, बहन, पति, पत्नी आदि की भलाई के लिए जो कर्म किये जाते हैं उन सबको तुष्टि श्राद्ध कहते हैं। (अनुक्रम)

श्राद्धयोग्य तिथियाँ

ऊँचे में ऊँचा, सबसे बढ़िया श्राद्ध श्राद्धपक्ष की तिथियों में होता है। हमारे पूर्वज जिस तिथि में इस संसार से गये हैं, श्राद्धपक्ष में उसी तिथि को किया जाने वाला श्राद्ध सर्वश्रेष्ठ होता है।

जिनके दिवंगत होने की तिथि याद न हो, उनके श्राद्ध के लिए अमावस्या की तिथि उपयुक्त मानी गयी है। बाकी तो जिनकी जो तिथि हो, श्राद्धपक्ष में उसी तिथि पर बुद्धिमानों को श्राद्ध करना चाहिए।

जो **पूर्णमासी** के दिन श्राद्धादि करता है उसकी बुद्धि, पुष्टि, स्मरणशक्ति, धारणाशक्ति, पुत्र-पौत्रादि एवं ऐश्वर्य की वृद्धि होती। वह पर्व का पूर्ण फल भोगता है।

इसी प्रकार **प्रतिपदा** धन-सम्पत्ति के लिए होती है एवं श्राद्ध करनेवाले की प्राप्त वस्तु नष्ट नहीं होती।

द्वितिया को श्राद्ध करने वाला व्यक्ति राजा होता है।

उत्तम अर्थ की प्राप्ति के अभिलाषी को **तृतिया** विहित है। यही तृतिया शत्रुओं का नाश करने वाली और पाप नाशिनी है।

जो **चतुर्थी** को श्राद्ध करता है वह शत्रुओं का छिद्र देखता है अर्थात उसे शत्रुओं की समस्त कूटचालों का ज्ञान हो जाता है।

पंचमी तिथि को श्राद्ध करने वाला उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति करता है।

जो **षष्ठी** तिथि को श्राद्धकर्म संपन्न करता है उसकी पूजा देवता लोग करते हैं।

जो **सप्तमी** को श्राद्धादि करता है उसको महान यज्ञों के पुण्यफल प्राप्त होते हैं और वह गणों का स्वामी होता है।

जो **अष्टमी** को श्राद्ध करता है वह सम्पूर्ण समृद्धियाँ प्राप्त करता है।

नवमी तिथि को श्राद्ध करने वाला प्रचुर ऐश्वर्य एवं मन के अनुसार अनुकूल चलने वाली स्त्री को प्राप्त करता है।

दशमी तिथि को श्राद्ध करने वाला मनुष्य ब्रह्मत्व की लक्ष्मी प्राप्त करता है।

एकादशी का श्राद्ध सर्वश्रेष्ठ दान है। वह समस्त वेदों का ज्ञान प्राप्त कराता है। उसके सम्पूर्ण पापकर्मों का विनाश हो जाता है तथा उसे निरंतर ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

द्वादशी तिथि के श्राद्ध से राष्ट्र का कल्याण तथा प्रचुर अन्न की प्राप्ति कही गयी है।

त्रयोदशी के श्राद्ध से संतति, बुद्धि, धारणाशक्ति, स्वतंत्रता, उत्तम पुष्टि, दीर्घायु तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

चतुर्दशी का श्राद्ध जवान मृतकों के लिए किया जाता है तथा जो हथियारों द्वारा मारे गये हों उनके लिए भी चतुर्दशी को श्राद्ध करना चाहिए।

अमावस्या का श्राद्ध समस्त विषम उत्पन्न होने वालों के लिए अर्थात तीन कन्याओं के बाद पुत्र या तीन पुत्रों के बाद कन्याएँ हों उनके लिए होता है। जुड़वे उत्पन्न होने वालों के लिए भी इसी दिन श्राद्ध करना चाहिए।

सधवा अथवा विधवा स्त्रियों का श्राद्ध **आश्विन (गुजरात-महाराष्ट्र के मुताबिक भाद्रपत) कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि के दिन** किया जाता है।

बच्चों का श्राद्ध **कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि** को किया जाता है।

दुर्घटना में अथवा युद्ध में घायल होकर मरने वालों का श्राद्ध **कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि** को किया जाता है।

जो इस प्रकार श्राद्धादि कर्म संपन्न करते हैं वे समस्त मनोरथों को प्राप्त करते हैं और अनंत काल तक स्वर्ग का उपभोग करते हैं। मघा नक्षत्र पितरों को अभीष्ट सिद्धि देने वाला है। अतः उक्त नक्षत्र के दिनों में किया गया श्राद्ध अक्षय कहा गया है। पितृगण उसे सर्वदा अधिक पसंद करते हैं।

जो व्यक्ति अष्टकाओं में पितरों की पूजा आदि नहीं करते उनका यह जो इन अवसरों पर श्राद्धादि का दान करते हैं वे देवताओं के समीप अर्थात् स्वर्गलोक को जाते हैं और जो नहीं करते वे तिर्यक्(पक्षी आदि अधम) योनियों में जाते हैं।

रात्रि के समय श्राद्धकर्म निषिद्ध है। (अनुक्रम)

वायु पुराणः 78.3

श्राद्धयोग्य स्थान

समुद्र तथा समुद्र में गिरने वाली नदियों के तट पर, गौशाला में जहाँ बैल न हों, नदी-संगम पर, उच्च गिरिशिखर पर, वनों में लीपी-पुती स्वच्छ एवं मनोहर भूमि पर, गोबर से लीपे हुए एकांत घर में नित्य ही विधिपूर्वक श्राद्ध करने से मनोरथ पूर्ण होते हैं और निष्काम भाव से करने पर व्यक्ति अंतःकरण की शुद्धि और परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है, ब्रह्मत्व की सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

अश्रद्दधानाः पाप्मानो नास्तिकाः स्थितसंशयाः।
हेतुद्रष्टा च पंचैते न तीर्थफलमश्नुते।।
गुरुतीर्थे परासिद्धिस्तीर्थानां परमं पदम्।
ध्यानं तीर्थपरं तस्माद् ब्रह्मतीर्थं सनातनम्।।

श्रद्धा न करने वाले, पापात्मा, परलोक को न मानने वाले अथवा वेदों के निन्दक, स्थिति में संदेह रखने वाले संशयात्मा एवं सभी पुण्यकर्मों में किसी कारण का अन्वेषण करने वाले कुतर्की-इन पाँचों को पवित्र तीर्थों का फल नहीं मिलता।

गुरुरूपी तीर्थ में परम सिद्धि प्राप्त होती है। वह सभी तीर्थों में श्रेष्ठ है। उससे भी श्रेष्ठ तीर्थ ध्यान है। यह ध्यान साक्षात् ब्रह्मतीर्थ हैं। इसका कभी विनाश नहीं होता।

वायु पुराणः 77.127.128

ये तु व्रते स्थिता नित्यं ज्ञानिनो ध्यानिनस्तथा।
देवभक्ता महात्मानः पुनीयुर्दर्शनादपि।।

जो ब्राह्मण नित्य व्रतपरायण रहते हैं, ज्ञानार्जन में प्रवृत्त रहकर योगाभ्यास में निरत रहते हैं, देवता में भक्ति रखते हैं, महान आत्मा होते हैं। वे दर्शनमात्र से पवित्र करते हैं।

वायु पुराणः 79.80

काशी, गया, प्रयाग, रामेश्वरम् आदि क्षेत्रों में किया गया श्राद्ध विशेष फलदायी होता है।
(अनुक्रम)

श्राद्ध करने का अधिकारी कौन?

वर्णसंकर के हाथ का दिया हुआ पिण्डदान और श्राद्ध पितर स्वीकार नहीं करते और वर्णसंकर संतान से पितर तृप्त नहीं होते वरन् दुःखी और अशांत होते हैं। अतः उसके कुल में भी दुःख, अशांति और तनाव बना रहता है।

श्रीमदभगवदगीता के प्रथम अध्याय के 42वें श्लोक में आया हैः

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।।

वर्णसंकर कुलघातियों को और कुल को नरक में ले जाने वाला ही होता है। श्राद्ध और तर्पण न मिलने से इन (कुलघातियों) के पितर भी अधोगति को प्राप्त होते हैं।

वर्णसंकरः एक जाति के पिता एवं दूसरी जाति की माता से उत्पन्न संतान को वर्णसंकर कहते हैं।

महाभारत के अनुशासन पर्व के अन्तर्गत दानधर्म पर्व में आता हैः

अर्थाल्लोभाद्रा कामाद्रा वर्णानां चाप्यनिश्चयात्।
अज्ञानाद्वापि वर्णानां जायते वर्णसंकरः।।
तेषामेतेन विधिना जातानां वर्णसंकरे।

धन पाकर या धन के लोभ में आकर अथवा कामना के वशीभूत होकर जब उच्च वर्ण की स्त्री नीच वर्ण के पुरुष के साथ संबंध स्थापित कर लेती है तब वर्णसंकर संतान उत्पन्न होती है। वर्ण का निश्चय अथवा ज्ञान न होने से भी वर्णसंकर की उत्पत्ति होती है।

महाभारतः दानधर्म पर्वः 48.1.2

श्राद्धकाल में शरीर, द्रव्य, स्त्री, भूमि, मन, मंत्र और ब्राह्मण ये सात चीज़ें विशेष शुद्ध होनी चाहिए। श्राद्ध में तीन बातों को ध्यान रखना चाहिए। शुद्धि, अक्रोध और अत्वरा यानी जल्दबाजी नहीं।

श्राद्ध में कृषि और वाणिज्य का धन उत्तम, उपकार के बदले दिया गया धन मध्यम और ब्याज एवं छल कपट से कमाया गया धन अधम माना जाता है। उत्तम धन से देवता और पितरों की तृप्ति होती है, वे प्रसन्न होते हैं। मध्यम धन से मध्यम प्रसन्नता होती है और अधम धन से छोटी योनि (चाण्डाल आदि योनि) में जो अपने पितर हैं उनको तृप्ति मिलती है। श्राद्ध में जो अन्न इधर उधर छोड़ा जाता है उससे पशु योनि एवं इतर योनि में भटकते हुए हमारे कुल के लोगों को तृप्ति मिलती है, ऐसा कहा गया है।

श्राद्ध के दिन भगवदगीता के सातवें अध्याय का माहात्मय पढ़कर फिर पूरे अध्याय का पाठ करना चाहिए एवं उसका फल मृतक आत्मा को अर्पण करना चाहिए। (अनुक्रम)

श्राद्ध में शंका करने का परिणाम व श्रद्धा करने से लाभ

बृहस्पति कहते हैं- "श्राद्धविषयक चर्चा एवं उसकी विधियों को सुनकर जो मनुष्य दोषदृष्टि से देखकर उनमें अश्रद्धा करता है वह नास्तिक चारों ओर अंधकार से घिरकर घोर नरक में गिरता है। योग से जो द्वेष करने वाले हैं वे समुद्र में ढोला बनकर तब तक निवास करते हैं जब तक इस पृथ्वी की अवस्थिति रहती है। भूल से भी योगियों की निन्दा तो करनी ही नहीं चाहिए क्योंकि योगियों की निन्दा करने से वहीं कृमि होकर जन्म धारण करना पड़ता है। योगपरायण योगेश्वरों की निन्दा करने से मनुष्य चारों ओर अंधकार से आच्छन्न, निश्चय ही अतयंत घोर

दिखाई पड़ने वाले नरक में जाता है। आत्मा को वश में रखने वाले योगेश्वरों की निन्दा जो मनुष्य सुनता है वह चिरकालपर्यंत कुम्भीपाक नरक में निवास करता है इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। योगियों के प्रति द्वेष की भावना मनसा, वाचा, कर्मणा सर्वथा वर्जित है।

जिस प्रकार चारागाह में सैंकड़ों गौओं में छिपी हुई अपनी माँ को बछड़ा ढूँढ लेता है उसी प्रकार श्राद्धकर्म में दिए गये पदार्थ को मंत्र वहाँ पर पहुँचा देता है जहाँ लक्षित जीव अवस्थित रहता है। पितरों के नाम, गोत्र और मंत्र श्राद्ध में दिये गये अन्न को उसके पास ले जाते हैं, चाहे वे सैंकड़ों योनियों में क्यों न गये हों। श्राद्ध के अन्नादि से उनकी तृप्ति होती है। परमेष्ठी ब्रह्मा ने इसी प्रकार के श्राद्ध की मर्यादा स्थिर की है।"

जो मनुष्य इस श्राद्ध के माहात्म्य को नित्य श्रद्धाभाव से, क्रोध को वश में रख, लोभ आदि से रहित होकर श्रवण करता है वह अनंत कालपर्यंत स्वर्ग भोगता है। समस्त तीर्थों एवं दानों को फलों को वह प्राप्त करता है। स्वर्गप्राप्ति के लिए इससे बढ़कर श्रेष्ठ उपाय कोई दूसरा नहीं है। आलस्यरहित होकर पर्वसंधियों में जो मनुष्य इस श्राद्ध-विधि का पाठ सावधानीपूर्वक करता है वह मनुष्य परम तेजस्वी संततिवान होता और देवताओं के समान उसे पवित्रलोक की प्राप्ति होती है। जिन अजन्मा भगवान स्वयंभू (ब्रह्मा) ने श्राद्ध की पुनीत विधि बतलाई है उन्हे हम नमस्कार करते हैं ! महान् योगेश्वरों के चरणों में हम सर्वदा प्रणाम करते हैं !

जीवात्मा का अगला जीवन पिछले संस्कारों से बनता है। अतः श्राद्ध करके यह भावना भी की जाती है कि उनका अगला जीवन अच्छा हो। वे भी हमारे वर्तमान जीवन की अड़चनों को दूर करने की प्रेरणा देते हैं और हमारी भलाई करते हैं।

आप जिससे भी बात करते हैं उससे यदि आप प्रेम से नम्रता से और उसके हित की बात करते हैं तो वह भी आपके साथ प्रेम से और आपके हित की बात करेगा। यदि आप सामने वाले से काम करवाकर फिर उसकी ओर देखते तक नहीं तो वह भी आपकी ओर नहीं देखेगा या आप से रुष्ट हो जायेगा। Every action creates reaction.

किसी के घर में ऐरे गैरे या लूले लँगड़े या माँ-बाप को दुःख देने वाले बेटे पैदा होते हैं तो उसका कारण भी यही बताया जाता है कि जिन्होंने पितरों को तृप्त नहीं किया है, पितरों का पूजन नहीं किया, अपने माँ-बाप को तृप्त नहीं किया उनके बच्चे भी उनको तृप्त करने वाले नहीं होते।

श्री अरविन्दघोष जब जेल में थे तब उन्होंने लिखा थाः "मुझे स्वामी विवेकानन्द की आत्मा द्वारा प्रेरणा मिलती है और मैं 15 दिन तक महसूस करता रहा हूँ कि स्वामी विवेकानन्द की आत्मा मुझे सूक्ष्म जगत की साधना का मार्गदर्शन देती रही है।" (अनुक्रम)

जब उन्होंने परलोकगमन वालों की साधना की तब उन्होंने महसूस किया कि रामकृष्ण परमहंस का अंतवाहक शरीर (उनकी आत्मा) भी उन्हें सहयोग देता था।

अब यहाँ एक संदेह हो सकता है कि श्री रामकृष्ण परमहंस को तो परमात्म-तत्त्व का साक्षात्कार हो गया था, वे तो मुक्त हो गये थे। वे अभी पितर लोक में तो नहीं होंगे। फिर उनके द्वारा प्रेऱणा कैसे मिली?

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में श्री वशिष्ठजी कहते हैं-

"ज्ञानी जब शरीर में होते हैं तब जीवन्मुक्त होते हैं और जब उनका शरीर छूटता है तब वे विदेहमुक्त होते हैं। फिर वे ज्ञानी व्यापक ब्रह्म हो जाते हैं। वे सूर्य होकर तपते हैं, चंद्रमा होकर चमकते हैं, ब्रह्माजी होकर सृष्टि उत्पन्न करते हैं, विष्णु होकर सृष्टि का पालन करते हैं और शिव होकर संहार करते हैं।

जब सूर्य एवं चंद्रमा में ज्ञानी व्याप जाते हैं तब अपने रास्ते जाने वाले को वे प्रेरणा दे दें यह उनके लिए असंभव नहीं है।

मेरे गुरुदेव तो व्यापक ब्रह्म हो गये लेकिन मैं अपने गुरुदेव से जब भी बात करना चाहता हूँ तो देर नहीं लगती। अथवा तो ऐसा कह सकते हैं कि अपना शुद्ध संवित ही गुरुरूप में पितृरूप में प्रेरणा दे देता है।

कुछ भी हो श्रद्धा से किए हुए पिण्डदान आदि कर्त्ता को मदद करते हैं। श्राद्ध का एक विशेष लाभ यह है कि 'मरने का बाद भी जीव का अस्तित्व रहता है....' इस बात की स्मृति बनी रहती है। दूसरा लाभ यह है कि इसमें अपनी संपत्ति का सामाजिकरण होता है। गरीब-गुरबे, कुटुम्बियों आदि को भोजन मिलता है। अन्य भोज-समारोहों में रजो-तमोगुण होता है जबकि श्राद्ध हेतु दिया गया भोजन धार्मिक भावना को बढ़ाता है और परलोक संबंधी ज्ञान एवं भक्तिभाव को विकसित करता है।

हिन्दुओं में जब पत्नी संसार से जाती है तब पति को हाथ जोड़कर कहती हैः "मेरे से कुछ अपराध हो गया हो तो क्षमा करना और मेरी सदगति के लिए आप प्रार्थना करना.... प्रयत्न करना।" अगर पति जाता है तो हाथ जोड़ते हुए कहता हैः "जाने अनजाने में तेरे साथ मैंने कभी कठोर व्यवहार किया हो तो तू मुझे क्षमा कर देना और मेरी सदगति के लिए प्रार्थना करना.... प्रयत्न करना।"

हम एक-दूसरे की सदगति के लिए जीते-जी भी सोचते हैं और मरणकाल का भी सोचते हैं, मृत्यु के बाद का भी सोचते हैं। (अनुक्रम)

श्राद्ध से प्रेतात्माओं का उद्धार

इस जमाने में भी जो समझदार हैं एवं उनकी श्राद्धक्रिया नहीं होती वे पितृलोक में नहीं, प्रेतलोक में जाते हैं। वे प्रेतलोक में गये हुए समझदार लोग समय लेकर अपने समझदार

संबंधियों अथवा धार्मिक लोगों को आकर प्रेरणा देते हैं किः "हमारा श्राद्ध करो ताकि हमारी सदगति हो।"

राजस्थान में कस्तूरचंद गड़ोदिया एक बडी पार्टी है। उनकी गणना बड़े-बड़े धनाढयों में होती है। उनके कुटुम्बियों में किसी का स्वर्गवास हो गया। गड़ोदिया फर्म के कन्हैयालालजी गया जी में उनका श्राद्ध करने गये, तब उन्हे वहाँ एक प्रेतात्मा दिखी। उस प्रेतात्मा ने कहाः "मैं राजस्थान में आपके ही गाँव का हूँ, लेकिन मेरे कुटुम्बियों ने मेरी उत्तरक्रिया नहीं की है, इसलिए मैं भटक रहा हूँ। आप कन्हैयालाल गड़ोदिया सेठ ! अपने कुटुम्बों का श्राद्ध करने के लिए आये हैं तो कृपा करके मेरे निमित्त भी आप श्राद्ध कर दीजिए। मैं आपके गाँव का हूँ, मेरा हजाम का धंधा था और मोहन नाई मेरा नाम है।"

कन्हैयालाल जी को तो पता नहीं था कि उनके गाँव का कौन सा नाई था लेकिन उन्होंने उस नाई के निमित्त श्राद्ध कर दिया।

राजस्थान वापस आये तो उन्होंने जाँच करवायी तब उन्हें पता चला कि थोड़े से वर्ष पूर्व ही कोई जवान मर गया था वह मोहन नाई था।

ऐसे ही एक बार एक पारसी प्रेतात्मा ने आकर हनुमान प्रसाद पोद्दार से प्रार्थना की किः "हमारे धर्म में तो श्राद्ध को नहीं मानते परन्तु मेरी जीवात्मा प्रेत के रूप में भटक रही है। आप कृपा करके हमारे उद्धार के लिए कुछ करें।"

हनुमान प्रसाद पोद्दार ने उस प्रेतात्मा के निमित्त श्राद्ध किया तो उसका उद्धार हो गया एवं उसने प्रभात काल में प्रसन्नवदन उनका अभिवादन किया कि मेरी सदगति हुई।

श्राद्धकर्म करने वालों में कृतज्ञता के संस्कार सहज में दृढ़ होते हैं जो शरीर की मौत के बाद भी कल्याण का पथ प्रशस्त करते हैं। श्राद्धकर्म से देवता और पितर तृप्त होते हैं और श्राद्ध करनेवाले का अंतःकरण भी तृप्ति-संतुष्टि का अनुभव करता है। बूढ़े-बुजुर्गों ने आपकी उन्नति के लिए बहुत कुछ किया है तो उनकी सदगति के लिए आप भी कुछ करेंगे तो आपके हृदय में भी तृप्ति-संतुष्टि का अनुभव होगा।

औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को कैद कर दिया था तब शाहजहाँ ने अपने बेटे को लिख भेजाः "धन्य हैं हिन्दू जो अपने मृतक माता-पिता को भी खीर और हलुए-पूरी से तृप्त करते हैं और तू जिन्दे बाप को भी एक पानी की मटकी तक नहीं दे सकता? तुझसे तो वे हिन्दू अच्छे, जो मृतक माता-पिता की भी सेवा कर लेते हैं।"

भारतीय संस्कृति अपने माता-पिता या कुटुम्ब-परिवार का ही हित नहीं, अपने समाज और देश का ही हित नहीं वरन् पूरे विश्व का हित चाहती है। (अनुक्रम)

गरूड़ पुराण में श्राद्ध-महिमा

"अमावस्या के दिन पितृगण वायुरूप में घर के दरवाजे पर उपस्थित रहते हैं और अपने स्वजनों से श्राद्ध की अभिलाषा करते हैं। जब तक सूर्यास्त नहीं हो जाता, तब तक वे भूख-प्यास से व्याकुल होकर वहीं खड़े रहते हैं। सूर्यास्त हो जाने के पश्चात वे निराश होकर दुःखित मन से अपने-अपने लोकों को चले जाते हैं। अतः अमावस्या के दिन प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। यदि पितृजनों के पुत्र तथा बन्धु-बान्धव उनका श्राद्ध करते हैं और गया-तीर्थ में जाकर इस कार्य में प्रवृत्त होते हैं तो वे उन्ही पितरों के साथ ब्रह्मलोक में निवास करने का अधिकार प्राप्त करते हैं। उन्हें भूख-प्यास कभी नहीं लगती। इसीलिए विद्वान को प्रयत्नपूर्वक यथाविधि शाकपात से भी अपने पितरों के लिए श्राद्ध अवश्य करना चाहिए।

कुर्वीत समये श्राद्धं कुले कश्चिन्न सीदति।
आयुः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्।।
पशून् सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्।
देवकार्यादपि सदा पितृकार्यं विशिष्यते।।
देवताभ्यः पितृणां हि पूर्वमाप्यायनं शुभम्।

"समयानुसार श्राद्ध करने से कुल में कोई दुःखी नहीं रहता। पितरों की पूजा करके मनुष्य आयु, पुत्र, यश, स्वर्ग, कीर्ति, पुष्टि, बल, श्री, पशु, सुख और धन-धान्य प्राप्त करता है। देवकार्य से भी पितृकार्य का विशेष महत्त्व है। देवताओं से पहले पितरों को प्रसन्न करना अधिक कल्याणकारी है।"

(10.57.59)

जो लोग अपने पितृगण, देवगण, ब्राह्मण तथा अग्नि की पूजा करते हैं, वे सभी प्राणियों की अन्तरात्मा में समाविष्ट मेरी ही पूजा करते हैं। शक्ति के अनुसार विधिपूर्वक श्राद्ध करके मनुष्य ब्रह्मपर्यंत समस्त चराचर जगत को प्रसन्न कर देता है।

हे आकाशचारिन् गरूड़ ! पिशाच योनि में उत्पन्न हुए पितर मनुष्यों के द्वारा श्राद्ध में पृथ्वी पर जो अन्न बिखेरा जाता है उससे संतृप्त होते हैं। श्राद्ध में स्नान करने से भीगे हुए वस्त्रों द्वारा जी जल पृथ्वी पर गिरता है, उससे वृक्ष योनि को प्राप्त हुए पितरों की संतुष्टि होती है। उस समय जो गन्ध तथा जल भूमि पर गिरता है, उससे देव योनि को प्राप्त पितरों को सुख प्राप्त होता है। जो पितर अपने कुल से बहिष्कृत हैं, क्रिया के योग्य नहीं हैं, संस्कारहीन और विपन्न हैं, वे सभी श्राद्ध में विकिरान्न और मार्जन के जल का भक्षण करते हैं। श्राद्ध में भोजन करने के बाद आचमन एवं जलपान करने के लिए ब्राह्मणों द्वारा जो जल ग्रहण किया जाता है, उस जल से पितरों को संतृप्ति प्राप्त होती है। जिन्हें पिशाच, कृमि और कीट की योनि मिली है तथा जिन

पितरों को मनुष्य योनि प्राप्त हुई है, वे सभी पृथ्वी पर श्राद्ध में दिये गये पिण्डों में प्रयुक्त अन्न की अभिलाषा करते हैं, उसी से उन्हें संतृप्ति प्राप्त होती है।

इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वेश्यों के द्वारा विधिपूर्वक श्राद्ध किये जाने पर जो शुद्ध या अशुद्ध अन्न जल फेंका जाता है, उससे उन पितरों की तृप्ति होती है जिन्होंने अन्य जाति में जाकर जन्म लिया है। जो मनुष्य अन्यायपूर्वक अर्जित किये गये पदार्थों के श्राद्ध करते हैं, उस श्राद्ध से नीच योनियों में जन्म ग्रहण करने वाले चाण्डाल पितरों की तृप्ति होती है।

हे पक्षिन् ! इस संसार में श्राद्ध के निमित्त जो कुछ भी अन्न, धन आदि का दान अपने बन्धु-बान्धवों के द्वारा किया जाता है, वह सब पितरों को प्राप्त होता है। अन्न जल और शाकपात आदि के द्वारा यथासामर्थ्य जो श्राद्ध किया जाता है, वह सब पितरों की तृप्ति का हेतु है।
(अनुक्रम)

(गरूड़ पुराण)

तर्पण और श्राद्ध संबंधी शंका समाधान

गरुड़ ने पूछाः "हे स्वामिन् ! पितृलोक से आकर इस पृथ्वी पर श्राद्ध में भोजन करते हुए पितरों को किसी ने देखा भी है?"

श्री भगवान ने कहाः "हे गरुड़ ! सुनो। देवी सीता का उदाहरण है। जिस प्रकार सीता जी ने पुष्कर तीर्थ में अपने ससुर आदि तीन पितरों को श्राद्ध में निमंत्रित ब्राह्मण के शरीर में प्रविष्ट हुआ देखा था, उसको मैं कह रहा हूँ।

हे गरूड़ ! पिता की आज्ञा प्राप्त करके जब श्री राम वन को चले गये तो उसके बाद सीता जी के साथ श्रीराम ने पुष्कर तीर्थ की यात्रा की। तीर्थ में पहुँचकर उन्होंने श्राद्ध करना प्रारम्भ किया। जानकी जी ने एक पके हुए फल को सिद्ध करके श्री राम जी के सामने उपस्थित किया। श्राद्धकर्म में दीक्षित प्रियतम श्री राम की आज्ञा से स्वयं दीक्षित होकर सीता जी ने उस धर्म का सम्यक पालन किया। उस समय सूर्य आकाशमण्डल के मध्य पहुँच गये और कुतुपमुहूर्त (दिन का आठवाँ मुहूर्त) आ गया था। श्री राम ने जिन ऋषियों को निमंत्रित किया था, वे सभी वहाँ पर आ गये थे। आये हुए उन ऋषियों को देखकर विदेहराज की पुत्री जानकी जी श्रीरामचंद्र की आज्ञा से अन्न परोसने के लिए वहाँ आयीं, किन्तु ब्राह्मणों के बीच जाकर वे तुरंत वहाँ से दूर चली गयीं और लताओं के मध्य छिपकर बैठ गयीं। सीता जी एकान्त में छिप गयी हैं, इस बात को जानकर श्रीराम ने विचार किया किः "ब्राह्मणों को बिना भोजन कराये साध्वी सीता लज्जा के कारण कहीं चली गयी होंगी।" पहले मैं इन ब्राह्मणों को भोजन करा लूँ फिर उनका अन्वेषण करूँगा। ऐसा विचारकर श्रीराम ने स्वयं उन ब्राह्मणों को भोजन कराया। भोजन के बाद उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों के चले जाने पर श्रीराम ने अपनी प्रियतमा सीता जी से पूछाः "ब्राह्मणों को देखकर तुम

लताओं की ओट में क्यों छिप गई थीं? हे तन्वङी ! तुम इसका समस्त कारण अविलम्ब मुझे बताओ।" श्री राम के ऐसा कहने पर सीता जी मुँह नीचे कर सामने खड़ी हो गयीं और अपने नेत्रों से आँसू बहाती हुई बोलीं-

सीता जी ने कहाः "हे नाथ ! मैंने यहाँ जिस प्रकार का आश्चर्य देखा है, उसे आप सुनें। हे राघव ! इस श्राद्ध में उपस्थित ब्राह्मण के अग्रभाग में मैंने आपके पिता का दर्शन किया, जो सभी आभूषणों से सुशोभित थे। उसी प्रकार के अन्य दो महापुरुष भी उस समय मुझे दिखायी पड़े। आपके पिता को देखकर मैं बिना बताये एकान्त में चली आय़ी थी। हे प्रभो ! वल्कल और मृगचर्म धारण किये हुए मैं राजा (दशरथ) के सम्मुख कैसे जा सकती थी? हे शत्रुपक्ष के वीरों का विनाश करने वाले प्राणनाथ ! मैं आपसे यह सत्य ही कह रही हूँ, अपने हाथ से राजा को मैं वह भोजन कैसे दे सकती थी, जिसके दासों के भी दास कभी वैसा भोजन नहीं करते रहे? तृणपात्र में उस अन्न को रखकर मैं उन्हे कैसे देती? मैं तो वही हूँ जो पहले सभी प्रकार के आभूषणों से सुशोभित रहती थी और राजा मुझे वैसी स्थिति में देख चुके थे। आज वही मैं राजा के सामने कैसे जा पाती? हे रघुनन्दन ! उसी से मन में आयी हुई लज्जा के कारण मैं वापस हो गयी।" (अनुक्रम)

(गरूड़ पुराण)

महाकाल-करन्धम संवाद

एक बार महाराज करन्धम महाकाल का दर्शन करने गये। कालभीति महाकाल ने जब करन्धम को देखा, तब उन्हें भगवान शंकर का वचन स्मरण हो आया। उन्होंने उनका स्वागत सत्कार किया और कुशल-प्रश्नादि के बाद वे सुखपूर्वक बैठ गये। तदनन्तर करन्धम ने महाकाल (कालभीति) से पूछाः "भगवन ! मेरे मन में एक बड़ा संशय है कि यहाँ जो पितरों को जल दिया जाता है, वह तो जल में मिल जाता, फिर वह पितरों को कैसे प्राप्त होता है? यही बात श्राद्ध के सम्बन्ध में भी है। पिण्ड आदि जब यहीं पड़े रह जाते हैं, तब हम कैसे मान लें कि पितर लोग उन पिण्डादि का उपयोग करते हैं? साथ ही यह कहने का साहस भी नहीं होता कि वे पदार्थ पितरों को किसी प्रकार मिले ही नहीं, क्योंकि स्वप्न में देखा जाता है कि पितर मनुष्यों से श्राद्ध आदि की याचना करते हैं। देवताओं के चमत्कार भी प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। अतः मेरा मन इस विषय में मोहग्रस्त हो रहा है।"

महाकाल ने कहाः "राजन ! देवता और पितरों की योनि ही इस प्रकार की है दूर से कही हुई बात, दूर से किया हुआ पूजन-संस्कार, दूर से की हुई अर्चा, स्तुति तथा भूत, भविष्य और वर्तमान की सारी बातों को वे जान लेते हैं और वहीं पहुँच जाते हैं। उनका शरीर केवल नौ तत्त्वों

(पाँच तन्मात्राएँ और चार अन्तःकरण) का बना होता है, दसवाँ जीव होता है, इसलिए उन्हें स्थूल उपभोगों की आवश्यकता नहीं होती।"

करन्धम ने कहाः "यह बात तो तब मानी जाये, जब पितर लोग यहाँ भूलोक में हों। परन्तु जिन मृतक पितरों के लिए यहाँ श्राद्ध किया जाता है वे तो अपने कर्मानुसार स्वर्ग या नरक में चले जाते हैं। दूसरी बात, जो शास्त्रों में यह कहा गया है किः पितर लोग प्रसन्न होकर मनुष्यों को आयु, प्रज्ञा, धन, विद्या, राज्य, स्वर्ग या मोक्ष प्रदान करते हैं... यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि जब वे स्वयं कर्मबन्धन में पड़कर नरक में है, तब दूसरों के लिए कुछ कैसे करेंगे!"

महाकाल ने कहाः "ठीक है, किन्तु देवता, असुर, यक्ष आदि के तीन अमूर्त तथा चारों वर्णओं के चार मूर्त, ये सात प्रकार के पितर माने गये हैं। ये नित्य पितर हैं। ये कर्मों के आधीन नहीं, ये सबको सब कुछ देने समर्थ हैं। इन नित्य पितरों के अत्यन्त प्रबल इक्कीस गण हैं। वे तृप्त होकर श्राद्धकर्त्ता के पितरों को, वे चाहे कहीं भी हो, तृप्त करते हैं।"

करन्धम ने कहाः "महाराज ! यह बात तो समझ में आ गयी, किन्तु फिर भी एक सन्देह है। भूत-प्रेतादि के लिए जैसे एकत्रित बलि आदि दिया जाता है, वैसे ही एकत्रित करके संक्षेप मे देवतादि के लिए भी क्यों नहीं दिया जाता? देवता, पितर, अग्नि, इनको अलग-अलग नाम लेकर देने में बड़ा झंझट तथा विस्तार से कष्ट भी होता है।"

महाकाल ने कहाः "सभी के विभिन्न नियम हैं। घर के दरवाजे पर बैठनेवाले कुत्ते को जिस प्रकार खाना दिया जाता है, क्या उसी प्रकार एक विशिष्ट सम्मानित व्यक्ति को भी दिया जाए?.... और क्या वह उस तरह दिए जाने पर उसे स्वीकार करेगा? अतः जिस प्रकार भूतादि को दिया जाता है उसी प्रकार देने पर देवता उसे ग्रहण नहीं करते। बिना श्रद्धा के दिया हुआ चाहे उसी प्रकार देने पर देवता उसे ग्रहण नहीं करते। बिना श्रद्धा के दिया हुआ चाहे वह जितना भी पवित्र तथा बहूमूल्य क्यों न हो, वे उसे कदापि नहीं लेते। यही नहीं, श्रद्धापूर्वक दिये गये पवित्र पदार्थ भी बिना मंत्र के वे स्वीकार नहीं करते।"

करन्धम ने कहाः "मैं यह जानना चाहता हूँ कि जो दान दिया जाता है वह कुश, जल और अक्षत के साथ क्यों दिया जाता है?"

महाकाल ने कहाः "पहले भूमि पर जो दान दिये जाते थे, उन्हें असुर लोग बीच में ही घुसकर ले लेते थे। देवता और पितर मुँह देखते ही रह जाते। आखिर उन्होंने ब्रह्मा जी से शिकायत की।

ब्रह्माजी ने कहा कि पितरों को दिये गये पदार्थों के साथ अक्षत, तिल, जल, कुश एवं जौ भी दिया जाए। ऐसा करने पर असुर इन्हें न ले सकेंगे। इसीलिए यह परिपाटी है।" (अनुक्रम)

एकनाथजी महाराज के श्राद्ध में पितृगण साक्षात प्रकट हुए

एकनाथजी महाराज श्राद्धकर्म कर रहे थे। उनके यहाँ स्वादिष्ट व्यंजन बन रहे थे। भिखमंगे लोग उनके द्वार से गुजरे। उन्हे बड़ी लिज्जतदार खुश्बू आयी। वे आपस में चर्चा करने लगेः "आज तो श्राद्ध है.... खूब माल उड़ेगा।"

दूसरे ने कहाः "यह भोजन तो पहले ब्राह्मणों को खिलाएँगे। अपने को तो बचे-खुचे जूठे टुकड़े ही मिलेंगे।"

एकनाथजी ने सुन लिया। उन्होंने अपनी धर्मपत्नी गिरजाबाई से कहाः "ब्राह्मणों को तो भरपेट बहुत लोग खिलाते हैं। इन लोगों में भी तो ब्रह्म परमात्मा विराज रहा है। इन्होंने कभी खानदानी ढंग से भरपेट स्वादिष्ट भोजन नहीं किया होगा। इन्हीं को आज खिला दें। ब्राह्मणों के लिए दूसरा बना दोगी न? अभी तो समय है।"

गिरजाबाई बोलीः "हाँ, हाँ पतिदेव ! इसमें संकोच से क्यों पूछते हो?"

गिरजाबाई सोचती है किः "मेरी सेवा में जरूर कोई कमी होगी, तभी स्वामी को मुझे सेवा सौंपने में संकोच हो रहा है।"

अगर स्वामी सेवक से संकुचित होकर कोई काम करवा रहे हैं तो यह सेवक के समर्पण में कमी है। जैसे कोई अपने हाथ-पैर से निश्चिन्त होकर काम लेता है ऐसे ही स्वामी सेवक से निश्चिन्त होकर काम लेने लग जायें तो सेवक का परम कल्याण हो गया समझना।

एकनाथ जी ने कहाः "..................तो इनको खिला दें।"

उन भिखमंगों में परमात्मा को देखनेवाले दंपत्ति ने उन्हें खिला दिया। इसके बाद नहा धोकर गिरजाबाई ने फिर से भोजन बनाना प्रारम्भ कर दिया। अभी दस ही बजे थे मगर सारे गाँव में खबर फैल गई किः 'जो भोजन ब्राह्मणों के लिए बना था वह भिखमंगों को खिला दिया गया। गिरजाबाई फिर से भोजन बना रही है।'

सब लोग अपने-अपने विचार के होते हैं। जो उद्दंड ब्राह्मण थे उन्होंने लोगों को भड़काया किः "यह ब्राह्मणों का घोर अपमान है। श्राद्ध के लिए बनाया गया भोजन ऐस म्लेच्छ लोगों को खिला दिया गया जो कि नहाते धोते नहीं, मैले कपड़े पहनते हैं, शरीर से बदबू आती है.... और हमारे लिए भोजन अब बनेगा? हम जूठन खाएँगे? पहले वे खाएँ और बाद में हम खाएँगे? हम अपने इस अपमान का बदला लेंगे।"

तत्काल ब्राह्मणों की आपातकालीन बैठक बुलाई गई। पूरा गाँव एक तरफ हो गया। निर्णय लिया गया कि "एकनाथ जी के यहाँ श्राद्धकर्म में कोई नहीं जाएगा, भोजन करने कोई नहीं जायेगा ताकि इनके पितर नर्क में पड़ें और इनका कुल बरबाद हो।"

एकनाथ जी के घर द्वार पर लट्ठधारी दो ब्राह्मण युवक खड़े कर दिये गये।

इधर गिरजाबाई ने भोजन तैयार कर दिया। एकनाथ जी ने देखा कि ये लोग किसी को आने देने वाले नहीं हैं।..... तो क्या किया जाये? जो ब्राह्मण नहीं आ रहे थे, उनकी एक-दो पीढ़ी में पिता, पितामह, दादा, परदादा आदि जो भी थे, एकनाथ जी महाराज ने अपनी संकल्पशक्ति, योगशक्ति का उपयोग करके उन सबका आवाहन किया। सब प्रकट हो गये।

"क्या आज्ञा है, महाराज !"

एकनाथजी बोलेः "बैठिये, ब्राह्मणदेव ! आप इसी गाँव के ब्राह्मण हैं। आज मेरे यहाँ भोजन कीजिए।"

गाँव के ब्राह्मणों के पितरों की पंक्ति बैठी भोजन करने। हस्तप्रक्षालन, आचमन आदि पर गाये जाने वाले श्लोकों से एकनाथ जी का आँगन गूँज उठा। जो दो ब्राह्मण लट्ठ लेकर बाहर खड़े थे वे आवाज सुनकर चौंके ! उन्होंने सोचाः 'हमने तो किसी ब्राह्मण को अन्दर जाने दिया।' दरवाजे की दरार से भीतर देखा तो वे दंग रह गये ! अंदर तो ब्राह्मणों की लंबी पंक्ति लगी है.... भोजन हो रहा है !

जब उन्होंने ध्यान से देखा तो पता चला किः "अरे ! यह क्या? ये तो मेरे दादा हैं ! वे मेरे नाना ! वे उसके परदादा !"

दोनों भागे गाँव के ब्राह्मणों को खबर करने। उन्होंने कहाः "हमारे और तुम्हारे बाप-दादा, परदादा, नाना, चाचा, इत्यादि सब पितरलोक से उधर आ गये हैं। एकनाथजी के आँगन में श्राद्धकर्म अब भोजन पा रहे हैं।"

गाँव के सब लोग भागते हुए आये एकनाथ झी के यहाँ। तब तक तो सब पितर भोजन पूरा करके विदा हो रहे थे। एकनाथ जी उन्हें विदाई दे रहे थे। गाँव के ब्राह्मण सब देखते ही रह गये ! आखिर उन्होंने एकनाथजी को हाथ जोड़े और बोलेः "महाराज ! हमने आपको नहीं पहचाना। हमें माफ कर दो।"

इस प्रकार गाँव के ब्राह्मणों एवं एकनाथजी के बीच समझौता हो गया। नक्षत्र और ग्रहों को उनकी जगह से हटाकर अपनी इच्छानुसार गेंद की तरह घुमा सकते हैं। स्मरण करने मात्र से देवता उनके आगे हाथ जोड़कर खड़े हो सकते हैं। आवाहन करने से पितर भी उनके आगे प्रगट हो सकते हैं और उन पितरों को स्थूल शरीर में प्रतिष्ठित करके भोजन कराया जा सकता है।
(अनुक्रम)

भगवदगीता के सातवें अध्याय का माहात्म्य

भगवान शिव कहते हैं- "हे पार्वती ! अब मैं सातवें अध्याय का माहात्म्य बतलाता हूँ, जिसे सुनकर कानों में अमृत-राशि भर जाती है।

पाटलिपुत्र नामक एक दुर्गम नगर है जिसका गोपुर (द्वार) बहुत ही ऊँचा है। उस नगर में शंकुकर्ण नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसने वैश्य वृत्ति का आश्रय लेकर बहुत धन कमाया किन्तु न तो कभी पितरों का तर्पण किया और न देवताओं का पूजन ही। वह धनोपार्जन में तत्पर होकर राजाओं को ही भोज दिया करता था।

एक समय की बात है। उस ब्राह्मण ने अपना चौथा विवाह करने के लिए पुत्रों और बन्धुओं के साथ यात्रा की। मार्ग में आधी रात के समय जब वह सो रहा था, तब एक सर्प ने कहीं से आकर उसकी बाँह में काट लिया। उसके काटते ही ऐसी अवस्था हो गई कि मणि, मंत्र और औषधि आदि से भी उसके शरीर की रक्षा असाध्य जान पड़ी। तत्पश्चात कुछ ही क्षणों में उसके प्राण पखेरु उड़ गये और वह प्रेत बना। फिर बहुत समय के बाद वह प्रेत सर्पयोनि में उत्पन्न हुआ। उसका वित्त धन की वासना में बँधा था। उसने पूर्व वृत्तान्त को स्मरण करके सोचाः

'मैंने घर के बाहर करोड़ों की संख्या में अपना जो धन गाड़ रखा है उससे इन पुत्रों को वंचित करके स्वयं ही उसकी रक्षा करूँगा।'

साँप की योनि से पीड़ित होकर पिता ने एक दिन स्वप्न में अपने पुत्रों के समक्ष आकर अपना मनोभाव बताया। तब उसके पुत्रों ने सवेरे उठकर बड़े विस्मय के साथ एक-दूसरे से स्वप्न की बातें कही। उनमें से मंझला पुत्र कुदाल हाथ में लिए घर से निकला और जहाँ उसके पिता सर्पयोनि धारण करके रहते थे, उस स्थान पर गया। यद्यपि उसे धन के स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं था तो भी उसने चिह्नों से उसका ठीक निश्चय कर लिया और लोभबुद्धि से वहाँ पहुँचकर बाँबी को खोदना आरम्भ किया। तब उस बाँबी से बड़ा भयानक साँप प्रकट हुआ और बोलाः

'ओ मूढ ! तू कौन है? किसलिए आया है? यह बिल क्यों खोद रहा है? किसने तुझे भेजा है? ये सारी बातें मेरे सामने बता।'

पुत्रः "मैं आपका पुत्र हूँ। मेरा नाम शिव है। मैं रात्रि में देखे हुए स्वप्न से विस्मित होकर यहाँ का सुवर्ण लेने के कौतूहल से आया हूँ।"

पुत्र की यह वाणी सुनकर वह साँप हँसता हुआ उच्च स्वर से इस प्रकार स्पष्ट वचन बोलाः "यदि तू मेरा पुत्र है तो मुझे शीघ्र ही बन्धन से मुक्त कर। मैं अपने पूर्वजन्म के गाड़े हुए धन के ही लिए सर्पयोनि में उत्पन्न हुआ हूँ।"

पुत्रः "पिता जी! आपकी मुक्ति कैसे होगी? इसका उपाय मुझे बताईये, क्योंकि मैं इस रात में सब लोगों को छोड़कर आपके पास आया हूँ।" (अनुक्रम)

पिताः "बेटा ! गीता के अमृतमय सप्तम अध्याय को छोड़कर मुझे मुक्त करने में तीर्थ, दान, तप और यज्ञ भी सर्वथा समर्थ नहीं हैं। केवल गीता का सातवाँ अध्याय ही प्राणियों के जरा मृत्यु आदि दुःखों को दूर करने वाला है। पुत्र ! मेरे श्राद्ध के दिन गीता के सप्तम अध्याय का पाठ करने वाले ब्राह्मण को श्रद्धापूर्वक भोजन कराओ। इससे निःसन्देह मेरी मुक्ति हो जायेगी। वत्स !

अपनी शक्ति के अनुसार पूर्ण श्रद्धा के साथ निर्व्यसी और वेदविद्या में प्रवीण अन्य ब्राह्मणों को भी भोजन कराना।"

सर्पयोनि में पड़े हुए पिता के ये वचन सुनकर सभी पुत्रों ने उसकी आज्ञानुसार तथा उससे भी अधिक किया। तब शंकुकर्ण ने अपने सर्पशरीर को त्यागकर दिव्य देह धारण किया और सारा धन पुत्रों के अधीन कर दिया। पिता ने करोड़ों की संख्या में जो धन उनमें बाँट दिया था, उससे वे पुत्र बहुत प्रसन्न हुए। उनकी बुद्धि धर्म में लगी हुई थी, इसलिए उन्होंने बावली, कुआँ, पोखरा, यज्ञ तथा देवमंदिर के लिए उस धन का उपयोग किया और अन्नशाला भी बनवायी। तत्पश्चात सातवें अध्याय का सदा जप करते हुए उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया।

हे पार्वती ! यह तुम्हें सातवें अध्याय का माहात्म्य बतलाया, जिसके श्रवणमात्र से मानव सब पातकों से मुक्त हो जाता है।" (अनुक्रम)

सातवाँ अध्यायःज्ञानविज्ञानयोग

।। अथ सप्तमोऽध्यायः।।

श्री भगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ।।1।।

श्री भगवान बोलेः हे पार्थ ! मुझमें अनन्य प्रेम से आसक्त हुए मनवाला और अनन्य भाव से मेरे परायण होकर, योग में लगा हुआ मुझको संपूर्ण विभूति, बल ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त सबका आत्मरूप जिस प्रकार संशयरहित जानेगा उसको सुन । (1)

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।।2।।

मैं तेरे लिए इस विज्ञान सहित तत्त्वज्ञान को संपूर्णता से कहूँगा कि जिसको जानकर संसार में फिर कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहता है । (2)

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ।।3।।

हजारों मनुष्यों में कोई एक मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है और उन यत्न करने वाले योगियों में भी कोई ही पुरुष मेरे परायण हुआ मुझको तत्त्व से जानता है । (3)

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।4।।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।5।।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश और मन, बुद्धि एवं अहंकार... ऐसे यह आठ प्रकार से विभक्त हुई मेरी प्रकृति है । यह (आठ प्रकार के भेदों वाली) तो अपरा है अर्थात मेरी जड़ प्रकृति है और हे महाबाहो ! इससे दूसरी को मेरी जीवरूपा परा अर्थात चेतन प्रकृति जान कि जिससे यह संपूर्ण जगत धारण किया जाता है । (4,5)

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।।6।।
मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।।7।।

हे अर्जुन ! तू ऐसा समझ कि संपूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियों(परा-अपरा) से उत्पन्न होने वाले हैं और मैं संपूर्ण जगत की उत्पत्ति तथा प्रलयरूप हूँ अर्थात् संपूर्ण जगत का मूल कारण हूँ । हे धनंजय ! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है । यह सम्पूर्ण सूत्र में मणियों के सदृश मुझमें गुँथा हुआ है । (6,7)

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ।।8।।
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ।।9।।

हे अर्जुन ! जल में मैं रस हूँ । चंद्रमा और सूर्य में मैं प्रकाश हूँ । संपूर्ण वेदों में प्रणव(ॐ) मैं हूँ । आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व मैं हूँ । पृथ्वी में पवित्र गंध और अग्नि में मैं तेज हूँ । संपूर्ण भूतों में मैं जीवन हूँ अर्थात् जिससे वे जीते हैं वह तत्त्व मैं हूँ तथा तपस्वियों में तप मैं हूँ । (8,9)

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।।10।।

हे अर्जुन ! तू संपूर्ण भूतों का सनातन बीज यानि कारण मुझे ही जान । मैं बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूँ । (10)

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।।11।।

हे भरत श्रेष्ठ ! आसक्ति और कामनाओँ से रहित बलवानों का बल अर्थात् सामर्थ्य मैं हूँ और सब भूतों में धर्म के अनुकूल अर्थात् शास्त्र के अनुकूल काम मैं हूँ । (11)

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ।।12।।

और जो भी सत्त्वगुण से उत्पन्न होने वाले भाव हैं और जो रजोगुण से तथा तमोगुण से उत्पन्न होने वाले भाव हैं, उन सबको तू मेरे से ही होने वाले हैं ऐसा जान । परन्तु वास्तव में उनमें मैं और वे मुझमे नहीं हैं । (12)

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ।।13।।

गुणों के कार्यरूप (सात्त्विक, राजसिक और तामसिक) इन तीनों प्रकार के भावों से यह सारा संसार मोहित हो रहा है इसलिए इन तीनों गुणों से परे मुझ अविनाशी को वह तत्त्व से नहीं जानता । (13)

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।14।।

यह अलौकिक अर्थात् अति अदभुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरंतर भजते हैं वे इस माया को उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसार से तर जाते हैं । (14)

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञानां आसुरं भावमाश्रिताः ।।15।।

माया के द्वारा हरे हुए ज्ञानवाले और आसुरी स्वभाव को धारण किये हुए तथा मनुष्यों में नीच और दूषित कर्म करनेवाले मूढ लोग मुझे नहीं भजते हैं । (15)

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।16।।

हे भरतवंशियो में श्रेष्ठ अर्जुन ! उत्तम कर्मवाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी – ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मुझे भजते हैं । (16)

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ।।17।।

उनमें भी नित्य मुझमें एकीभाव से स्थित हुआ, अनन्य प्रेम-भक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है क्योंकि मुझे तत्त्व से जानने वाले ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यंत प्रिय है । (17)

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वातमैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ।।18।।

ये सभी उदार हैं अर्थात् श्रद्धासहित मेरे भजन के लिए समय लगाने वाले होने से उत्तम हैं परन्तु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही हैं ऐसा मेरा मत है । क्योंकि वह मदगत मन-बुद्धिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप मुझमें ही अच्छी प्रकार स्थित है । (18)

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।।19।।

बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त हुआ ज्ञानी सब कुछ वासुदेव ही है- इस प्रकार मुझे भजता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है । (19)

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ।।20।।

उन-उन भोगों की कामना द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है वे लोग अपने स्वभाव से प्रेरित होकर उस-उस नियम को धारण करके अन्य देवताओं को भजते हैं अर्थात् पूजते हैं । (20)

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ।।21।।

जो-जो सकाम भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस-उस भक्त की श्रद्धा को मैं उसी देवता के प्रति स्थिर करता हूँ । (21)

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ।।22।।

वह पुरुष उस श्रद्धा से युक्त होकर उस देवता का पूजन करता है और उस देवता से मेरे द्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगों को निःसन्देह प्राप्त करता है। (22)

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ।।23।।

परन्तु उन अल्प बुद्धिवालों का वह फल नाशवान है तथा वे देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजें, अंत में मुझे ही प्राप्त होते हैं । (23)

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ।।24।।

बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम, अविनाशी, परम भाव को न जानते हुए, मन-इन्द्रयों से परे मुझ सच्चिदानंदघन परमात्मा को मनुष्य की भाँति जानकर व्यक्ति के भाव को प्राप्त हुआ मानते हैं । (24)

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः |
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।।25।।

अपनी योगमाया से छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता इसलिए यह अज्ञानी जन समुदाय मुझ जन्मरहित, अविनाशी परमात्मा को तत्त्व से नहीं जानता है अर्थात् मुझको जन्मने-मरनेवाला समझता है । (25)

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन |
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ||26||

हे अर्जुन! पूर्व में व्यतीत हुए और वर्तमान में स्थित तथा आगे होनेवाले सब भूतों को मैं जानता हूँ, परन्तु मुझको कोई भी श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता | (26)

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ।।27।।

हे भरतवंशी अर्जुन ! संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोह से संपूर्ण प्राणी अति अज्ञानता को प्राप्त हो रहे हैं । (27)

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ।।28।।

(निष्काम भाव से) श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करने वाला जिन पुरुषों का पाप नष्ट हो गया है, वे राग-द्वेषादिजनित द्वन्द्वरूप मोह से मुक्त और दृढ़ निश्चयवाले पुरुष मुझको भजते हैं । (28)

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ।।29।।

जो मेरे शरण होकर जरा और मरण से छूटने के लिए यत्न करते हैं, वे पुरुष उस ब्रह्म को तथा संपूर्ण अध्यात्म को और संपूर्ण कर्म को जानते हैं । (29)

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ।।30।।

जो पुरुष अधिभूत और अधिदैव के सहित तथा अधियज्ञ के सहित (सबका आत्मरूप) मुझे अंतकाल में भी जानते हैं, वे युक्त चित्तवाले पुरुष मुझको ही जानते हैं अर्थात् मुझको ही प्राप्त होते हैं। (30)

ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवदगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगे नाम सप्तमोऽध्यायः।।7।।
इस प्रकार उपनिषद्, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रस्वरूप श्रीमद् भगवदगीता में
श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के संवाद में 'ज्ञानवियोग नामक' सातवाँ अध्याय संपूर्ण।
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ